UP Board Notes for Class 10 Hindi Chapter 3 वीरः वीरेण पूज्यते (संस्कृत-खण्ड)

(स्थानम्-अलक्षेन्द्रस्य सैन्य शिविरम्। अलक्षेन्द्रः आम्भीकश्च आसीनौ वर्तते। वन्दिनं पुरुराजम् अग्रे कृत्वा एकतः प्रविशति यवन-सेनापतिः।)
सेनापतिः–विजयतां सम्राट्।
पुरुराजः–एष भारतवीरोऽपि यवनराजम् अभिवादयते।
अलक्षेन्द्रः-(साक्षेपम्) अहो ! बन्धनगत: अपि आत्मानं वीर इति मन्यसे पुरुराज ?
पुरुराजः-यवनराज ! सिंहस्तु सिंह एव, वने वा भवेतु पजरे वा।
अलक्षेन्द्रः-किन्तु पञ्जरस्थः सिंहः न किमपि पराक्रमते।
पुरुराजः-पराक्रमते, यदि अवसरं लभते। अपि च यवनराज !
बन्धनं मरणं वापि जयो वापि पराजयः ।।
उभयत्र समो वीरः वीरभावो हि वीरता ।। **[2010, 17]**
उत्तर
[अलक्षेन्द्रस्य = सिकन्दर का। सैन्यशिविरम् = सेना का शिविर। वन्दिनम् :- कैदी को। अभिवादयते = नमस्कार करता है। साक्षेपम् = ताना मारते हुए। बन्धनगतः = कैद किया हुआ। उभयत्र = दोनों जगह।] ।

सन्दर्भ-प्रस्तुत नाट्यांश हमारी पाठ्य-पुस्तक हिन्दी के 'संस्कृत-खण्ड' के 'वीरः वीरेण पूज्यते । पाठ से अवतरित है।

प्रसंग-इसमें सिकन्दर और पुरुराज के संवादों के द्वारा वीरती को परिभाषित किया गया है।

अनुवाद-स्थान-(सिकन्दर की सेना का शिविर। सिकन्दर और आम्भीक बैठे हुए हैं। बन्दी बनाये गये पुरुराज को आगे करके यवनों का सेनापति एक ओर से प्रवेश करता है।)

सेनापति-सम्राट् की जय हो।
पुरुराज-यह भारतीय वीर (मैं) भी यवनराज का अभिवादन करता है।
सिकन्दर-(व्यंग्यपूर्वक) अहा! बन्धन में पड़े हुए भी तुम अपने को वीर मानते हो, पुरुराज! ।
पुरुराज-यवनराज! सिंह तो सिंह ही होता है, वन में रहे या पिंजरे में।
सिकन्दर–किन्तु पिजर में पड़ा हुआ सिंह कुछ भी पराक्रम नहीं करता है।
पुरुराज–यदि अवसर मिल जाये तो अवश्य करता है और भी हे यवनराज!
श्लोक-"बन्धन हो अथवा मरण हो, जीत हो या हार हो, दोनों ही अवस्थाओं में वीर समान रहता है। वीर भाव को ही वीरता कहते हैं।"

आम्भिराजः-सम्राट् ! वाचाल ऐष हन्तव्यः।
सेनापतिः- आदिशतु सम्राट्।
अलक्षेन्द्रः-अथ मम मैत्रीसन्धेः अस्वीकरणे तव किम् अभिमतम् आसीत् पुरुराज।

पुरुराजः-स्वराजस्य रक्षा, राष्ट्रद्रोहाच्च मुक्ति ।।
अलक्षेन्द्रः–मैत्रीकरणेऽपि राष्ट्रदोहः ?
पुरुराजः-आम्। राष्ट्रदोहः। यवनराज ! एकम् इदं भारतं राष्ट्रं, बहूनि चात्र राज्यानि, बहवश्च शासकाः। त्वं मैत्रीसन्धिना तान् विभज्य भारतं जेतुम् इच्छसि। आम्भीकः चास्य प्रत्यक्षं प्रमाणम्।।
अलक्षेन्द्रः–भारतम् एकं राष्ट्रम् इति तव वचनं विरुद्धम्। इह तावत् राजानः जनाः च परस्परं द्रुह्यन्ति।
पुरुराजः–तत् सर्वम् अस्माकम् आन्तरिक: विषय:। बाह्यशक्तेः तत्र हस्तक्षेप: असह्यः। यवनराज ! पृथग्धर्माः पृथग्भाषाभूषाः अपि वयं सवें **भारतीयाः**, विशालम् अस्माकं राष्ट्रम्। तथाहि–
उत्तरं यत् समुद्रस्य हिमाद्रेश्चैव दक्षिणम्।।
वर्षं तद् भारतं नाम भारती यत्र सन्ततिः ॥ | **[2010, 12, 15]**
उत्तर
[वाचालः = बातूनी। हन्तव्यः = मारने योग्य है। अस्वीकरणे = अस्वीकार करने पर। मैत्रीसन्धेः = मित्रता की सन्धि के अभिमतम् = विचार। मुक्तिः = छुटकारा। विभज्य = बाँटकर। जेतुम् इच्छसि = जीतने की इच्छा करते हो। विरुद्धं विपरीत। द्रुह्यन्ति = द्रोह करते हैं। हस्तक्षेपः = दखल। भारतीयः = भारतवासी।]

सन्दर्भ-पूर्ववत्।।
प्रसंग-इस नाट्यांश में भारतवर्ष की एकता और अखण्डता पर प्रकाश डाला गया है।
अनुवाद-आम्भिराज–सम्राट्! यह बातूनी (वाचाल) मारने योग्य है।
सेनापति–आज्ञा दें सम्राट्! सिकन्दर–मेरी मित्रतापूर्ण सन्धि के अस्वीकार करने में तुम्हारा क्या आशय था, पुरुराज ?
पुरुराज-अपने राज्य की रक्षा और राष्ट्रद्रोह से छुटकारा।
सिकन्दर-मित्रता करने में भी राष्ट्रद्रोह ?

पुरुराज-हाँ! राष्ट्रद्रोह। यवनराज! यह भारत एक राष्ट्र है और यहाँ बहुत-से राज्य और बहुत-से , शासक हैं। तुम मित्रतापूर्ण सन्धि से उन्हें खण्डित करके भारत को जीतना चाहते हो। आम्भीक इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है।

सिकन्दर–भारत एक राष्ट्र है, यह तुम्हारा कथन गलत है। यहाँ तो राजा और प्रजा आपस में द्वेष करते हैं।

पुरुराज-वह सब हमारा आन्तरिक मामला है। उसमें बाहरी शक्ति का हस्तक्षेप असहनीय है। यवनराज ! अलग धर्म, अलग भाषा और अलग वेशभूषा के होते हुए भी हम सब भारतीय हैं। हमारा राष्ट्र विशाल है। जैसा कि

"समुद्र के उत्तर में और हिमालय के दक्षिण में जो देश स्थित है, वह भारतवर्ष है, जिसकी सन्तान भारतवासी हैं।"

अलक्षेन्द्रः-अथ मे भारतविजय: दुष्करः।
पुरुराजः-न केवलं दुष्करः असम्भवोऽपि। |
अलक्षेन्द्रः- (सरोषम्) दुर्विनीत, किं न जानासि, इदानीं विश्वविजयिनः अलक्षेन्द्रस्य अग्रे वर्तसे ?
पुरुराजः–जानामि, किन्तु सत्यं तु सत्यम् एव यवनराज ! भारतीयाः वयं गीतायाः सन्देशं न विस्मरामः ।
अलक्षेन्द्रः-कस्तावत् गीतायाः सन्देशः ? पुरुराजः-श्रूयताम्-
हतो वा प्राप्स्यसि स्वर्गं जित्वा वा भोक्ष्यसे महीम् ।।
निराशीर्निर्ममो भूत्वा युध्यस्व विगतज्वरः ॥ **[2009, 13, 16]**
उत्तर

https://www.evidyarthi.in/

[दुष्करः = कठिन है। सरोषम् = क्रोधसहित। दुर्विनीत = दुष्ट। न विस्मरामः = नहीं भूलते हैं। हतो = मारे जाने पर। प्राप्स्यसि = प्राप्त करोगे। जित्वा = जीतकर। भोक्ष्यसे = भोगोगे। निराशीर्निर्ममो (निराशी: + निर्ममो) = बिना किसी इच्छा और मोह के।]

सन्दर्भ-पूर्ववत्।।
प्रसंग–इस नाट्यांश में पुरुराज की निर्भीकता और उसके द्वारा सिकन्दर को दिये गीता के ज्ञान का वर्णन किया गया है।
अनुवाद–सिकन्दरे-तो मेरा भारत पर विजय प्राप्त करना कठिन है ? पुरुराज-केवल कठिन ही नहीं; असम्भव भी है।
सिकन्दर—(क्रोधसहित) दुष्ट! क्या तू नहीं जानता कि इस समय तू विश्वविजेता सिकन्दर के सामने (खड़ा) है?
पुरुराज–जानता हूँ, किन्तु सत्य तो सत्य ही है, यवनराज! हम भारतवासी गीता के सन्देश को नहीं भूलते हैं।
सिकन्दर-तो क्या है, तुम्हारी गीता का सन्देश पुरुराज–सुनो-"(यदि युद्ध में) मारे गये तो तुम स्वर्ग को प्राप्त करोगे अथवा जीत गये तो पृथ्वी (के राज्य) को भोगोगे। (इसलिए तुम) इच्छारहित, ममतारहित और सन्तापरहित होकर युद्ध करो।"

अलक्षेन्द्रः-(किमपि विचिन्त्य) अलं तव गीतया । पुरुराज ! त्वम् अस्माकं बन्दी वर्तसे । ब्रूहि कथं त्वयि वर्तितव्यम् ? ।
पुरुराजः-यथैकेन वीरेण वीरं प्रति।
अलक्षेन्द्रः-(पुरो: वीरभावेन हर्षितः) साधु वीर ! साधु ! नूनं वीरः असि । धन्यः त्वं, धन्या ते मातृभूमिः। (सेनापतिम् उद्दिश्य) सेनापते!
सेनापतिः—सम्राट ! अलक्षेन्द्रः-वीरस्य पुरुराजस्य बन्धनानि मोचय। सेनापतिः–यत् सम्राट् आज्ञापयति।।
अलक्षेन्द्रः-(एकेन हस्तेन पुरोः द्वितीयेन च आम्भीकस्य हस्तं गृहीत्वा) वीर पुरुराज ! सखे आम्भीक ! इतः परं वयं सर्वे समानमित्राणि, इदानीं मैत्रीमहोत्सवं सम्पादयामः। .
(सर्वे निर्गच्छन्ति)
उत्तर
[वर्तितव्यम् = व्यवहार करना चाहिए। युध्यस्व = युद्ध करो। विगतज्वरः = सन्तापरहित होकर। साधु = धन्य। मोचयः = खोल दो। निर्गच्छन्ति = बाहर निकल जाते हैं।]

सन्दर्भ-पूर्ववत्।।
प्रसंग–इस नाट्यांश में सन्देश दिया गया है कि शत्रुता होने पर भी एक वीर को दूसरे वीर के साथ वीरोचित व्यवहार ही करना चाहिए।
अनुवाद–सिकन्दर-(कुछ विचारकर) बस, रहने दो अपनी गीता को। पुरुराज! तुम हमारे कैदी हो। बताओ, तुमसे कैसा व्यवहार किया जाए?
पुरुराज-जैसा एक वीर दूसरे वीर के साथ करता है।
सिकन्दर–(पुरु की वीरता से हर्षित होकर) धन्य वीर! धन्य! वास्तव में तुम वीर हो। तुम धन्य हो! तुम्हारी मातृभूमि धन्य है। (सेनापति को लक्ष्य करके) सेनापति!
सेनापति–सम्राट्! सिकन्दर-वीर पुरुराज के बन्धन खोल दो। सेनापति–सम्राट् की जैसी आज्ञा।
सिकन्दर–(एक हाथ से पुरु की और दूसरे हाथ से आम्भीक का हाथ पकड़कर) वीर पुरुराज! मित्र आम्भीक! इसके बाद हम सब बराबरी के मित्र हैं। इस समय मित्रता का महोत्सव मनाएँ।
(सब बाहर निकल जाते हैं।)